गीतादर्शन

दुनियाँ के अधिकांश व्यक्तियों के मन में जीवन व जगत् के सम्बन्ध में बहुत से भ्रम, संशय अथवा उलझन प्रतिपल उत्पन्न होते रहते हैं। शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, हेय-उपादेय, भक्ष्य-अभक्ष्य, सत्य-असत्य, उचित-अनुचित, कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य से लेकर ईश्वर, जीव, प्रकृति, जीवन-मृत्यु, पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मादि के सन्दर्भ में सदैव मन में एक भ्रम या उहापोह की स्थिति बनी रहती है! आम जनों से लेकर विद्वत् जनों तक के मन-मस्तिष्क व हृदय में यह जो संशय या भ्रम की स्थिति बार-बार उत्पन्न होती है, और उससे जीवन में एक अवरोध, अवसाद, अविश्वास, निराशा, अकर्मण्यता व आत्मग्लानि का भाव पैदा हो जाता है। व्यक्ति कुण्ठित होकर बैठ जाता है। वह धर्म, स्वधर्म, स्वकर्म, वर्णाश्रमधर्म, परिवारधर्म, समाजधर्म, मानवधर्म व राष्ट्रधर्मादि के बारे कोई निर्णय नहीं ले पाता और परिणामत: महाबलशाली, पराक्रमी, शूरवीर व महाविद्वान् व्यक्ति भी कुंठित होकर एक उलझन में फंस जाता है। गीता के अर्जुन तो मात्र एक पात्र हैं जो स्थिति अर्जुन की है वही स्थिति लगभग प्रत्येक इंसान की अपने जीवन में हैं। योगेश्वर भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को माध्यम बनाकर विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को अवसाद (डिप्रेशन) से बाहर निकलने का उपदेश दे रहे हैं। अर्जुन मोहग्रस्त होकर '**सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति** तथा **वेपधुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते** १/२९ आदि श्लोकों के संवाद में श्री कृष्ण से कह रहे हैं कि हे श्री कृष्ण मेरा शरीर कांप रहा है, मुख सूख रहा है, रोंगटे खड़े हो रहे हैं, त्वचा में जलन, मन में भ्रम की स्थिति पैदा हो रही है तथा यह गाण्डीव हाथ से छूटा जा रहा है और ऐसा कहते हुए अन्त में वह युद्धभूमि में बैठ जाता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में ये समस्त लक्षण तनाव अथवा डिप्रेशन के हैं और आज प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कमोवेश यही सत्य लगभग १००% घटित हो रहा है। अत: इस सम्पूर्ण विश्व को डिप्रेशन या अवसाद तथा अवसाद जनित रोगों रक्तचाप, मधुमेह व हृदय रोगों आदि से बचाना तथा इस अवसाद, तनाव, भ्रम या उलझन से व्यक्ति को बाहर निकालकर उसको स्वधर्म में लगाना और अकर्मण्यता, निराशा, अविश्वास व आत्मग्लानि को मिटाकर जन जन में पुरुषार्थ, ऊर्जा, आशा, विश्वास व आत्मगौरव का भाव जागृत कर उनको स्वधर्म या स्वकर्म में लगाना अथवा पूर्ण पवित्रता व जवाबदेही के साथ कर्त्तव्य पालन में नियुक्त करना आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता या प्राथमिकता है। योगेश्वर श्री कृष्ण जी ने पाँच हजार वर्ष पहले जो उपदेश, संदेश व अन्त में जो आदेश दिया था वह आज भी उतना ही सार्थक, प्रासङ्गिक व आवश्यक है।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥ २/३

तू नपुंसकता, कायरता व पलायन की बातें छोड़ अपने कर्त्तव्य का पालन कर। आज भी मानव समाज के सामने सबसे बड़ी समस्या संकट व चुनौती है कर्त्तव्य-विमुखता, असंवेदनशीलता, आलस्य, अकर्मण्यता व कायरता। योगेश्वर श्री कृष्ण कह रह हैं हे अर्जुन! आत्मा अजर, अमर, नित्य, अविनाशी व अविकारी है। मृत्यु से भयभीत नहीं हो, मृत्यु तो पुनर्जन्म है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ २/२७

स्वधर्म या कर्त्तव्य का पालन करता हुआ अगर तू युद्ध में मारा भी जायेगा तो तुझे निश्चय ही स्वर्ग, आत्मसंतोष, सुख, शान्ति, तृप्ति या मुक्ति मिलेगी और यदि कर्त्तव्य पालन करता हुआ तू विजयी होगा तो सम्पूर्ण पृथ्वी का साम्राज्य पायेगा।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥ २/३७

योगेश्वर श्री कृष्ण बार-बार अनासक्त, निःस्पृह, कर्मफल की इच्छा से रहित होकर योगस्थ होकर समर्पित भाव से कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ २/४७

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ २/४८

कर्म ही धर्म है, कर्म ही पूजा है, कर्म ही जीवन व जगत् का सत्य है। अकर्मण्य व्यक्ति राक्षस या असुर है, आराम हराम है तथा कार्यान्तर ही विश्राम है। योगेश्वर श्री कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ ३/२२

हे पार्थ मुझे तीनों लोकों में न तो कुछ प्राप्त करना है और न ही कोई ऐसी वस्तु है जो मुझे प्राप्त न हो, फिर भी मैं कर्त्तव्यकर्म के पालन में निरन्तर संलग्न हूँ। क्योंकि यदि मैंने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया तो संसार की सम्पूर्ण व्यवस्थाएं ही नष्ट हो जायेंगी और समस्त प्रजाएं भ्रष्ट हो जायेंगी।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ ३/२१

आगे भगवान् कहते हैं-

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। ३/३५

अपने कर्त्तव्य-कर्म स्वधर्म का पालन करते हुए मरना भी श्रेष्ठ है और स्वधर्म के विरुद्ध आचरण भय, दुःख व अशान्ति देने वाला है। योगेश्वर भगवान् श्री कृष्ण ज्ञान-योग, सांख्ययोग, भक्तियोग, विश्वरूपदर्शनयोग, विभूतियोग, राजविद्याराजगुह्ययोग, अक्षरब्रह्मयोग, आत्मसंयमयोग व मोक्षसन्यासयोग आदि समस्त योगों का उपदेश करके पुनः अन्त में गीता के १८ वें अध्याय में कर्मयोग अर्थात्- कर्त्तव्यपालन से ही अपना उपदेश, संदेश या आदेश समाप्त करते हुए कहते हैं-

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।। १८/४५

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ १८/४६

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्॥ १८/४७

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्॥ १८/४८

प्रकृति व परमेश्वर ने जिस उद्देश्य के लिए तुम्हें जन्म दिया है उस कर्तव्य कर्म को अपना स्वकर्म स्वधर्म मानकर अपने कर्त्तव्य का निर्वहन कर, यही सब वेद, दर्शन, उपनिषदों व गीता का सार है।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥ ६/१

कर्मफल की इच्छा (वासना) से रहित होकर जो बिना प्रलोभन या भय के कर्त्तव्य कर्म का पालन कर रहा है वही सच्चा संन्यासी व सच्चा योगी है, अग्निहोत्रादि कर्मकाण्ड की क्रियाओं को छोड़ने वाला अथवा कर्त्तव्य कर्म से पलायन करने वाला योगी नहीं होता है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमर्धस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ ७/६

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। ७/८

जब जब समाज में आत्मविमुखता, असंवदेनशीलता, उदासीनता, अकर्मण्यता, पाप, हिंसा, अपराध, दुराचार, व्यभिचार, निराशा, अविश्वास व आत्मग्लानि का भाव बढ़ जाता है और मनुष्य धर्म-स्वधर्म व राष्ट्रधर्म को विस्मृत कर देता है तो स्वयं भगवान् अपनी सच्चे प्रतिनिधियों को धरती पर जन्म देता है।

परमात्मा या ईश्वर ने तुझे अपना प्रतिनिधि के रूप में धरती पर भेजा है। उठ जाग अपने स्वधर्म-स्वकर्म, राष्ट्रधर्म, युगधर्म व कर्त्तव्य कर्म का पालन कर; साधुओं, सन्त, सज्जन या पुण्यात्माओं देशक्त व प्रभुभक्तों की रक्षा व पापी भ्रष्टाचारियों को नष्ट करने के लिए ही तेरा जन्म हुआ है। अतः संशय व भ्रम को मिटाकर स्वधर्म को पूर्ण समर्पण के साथ निभा।

यद्यपि योगेश्वर श्री कृष्ण योगी को सबसे श्रेष्ठ मानते हैं।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥ ६/४६

तपस्वियों, ज्ञानियों एवं कर्मियों (अपनी कामनाओं को पूर्ण करने में रात दिन लगे हुए सकामकर्मियों) से भी- योगी श्रेष्ठ है। अतः हे अर्जुन तुझे अन्य कुछ भी होने से पहले योगी होना है। योगी होना गीता की दृष्टि में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रथम व अनिवार्य शर्त है। परन्तु योगी को भी कर्त्तव्य से पलायन नहीं करना।

योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये। ५/११

कर्म करते हुए कर्म के बन्धन से मुक्त रह सके अतः ज्ञानी बनना **'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'** (४/३८) तथा ज्ञान प्राप्त करके भी श्रद्धावान् रहना, भक्ति करना अन्यथा केवल ज्ञान तुम्हें अहंकारी बना देगा।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ १८/६५

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति॥ ६/३०

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ ७/१९

सब रूप परमात्मा के ही प्रतिरूप हैं अर्थात् सब रूपों में ब्रह्मरूप का दर्शन व सब सम्बन्धों में ब्रह्म सम्बन्ध की अनुभूति करता हुआ स्वकर्म को स्वधर्म मानकर तू सर्वभाव से उस ईश्वर की शरण में जा, यही परमशान्ति व मुक्ति का एक मात्र मार्ग है।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ १८/६२

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ १८/६६

गीता कोई पूजा पाठ की पद्धति अथवा किसी प्रतिकात्मक धर्म का प्रतिनिधित्व नहीं करती अपितु गीता का ज्ञान सार्वभौमिक, वैज्ञानिक व सार्वकालिक है। गीता जीवन को अन्तर्दृष्टि से परिपूरित करने वाला अन्तश्चक्षु है। गीता निराशा, अविश्वास अकर्मण्यता, काल्पनिक भय, भ्रम, संशय, अशान्ति, असंवदेनशीलता, कायरता, आत्मग्लानि एवं अवसाद से भरे प्रत्येक मनुष्य के लिए एक जीवन्त दर्शन है, एक संजीवनी है। आओ अब संशय, मोह अज्ञान को छोड़ सन्त व शास्त्रों के उपदेश के अनुरूप जीवन जीते हुए स्वकर्म, स्वकर्त्तव्य अथवा स्वधर्म के पालन का प्रण लें।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥ १८/७३

ऋषियों, तपस्वियों, सिद्धों, ज्ञानियों, भक्तों, तत्त्वदर्शियों से (प्रत्यक्ष या परोक्षरूपेण) प्राप्त यह गीतामृतरूप प्रसाद उन लोगों के लिये समर्पित है जो जीवन से हताश, निराश व किंकर्तव्यविमूढ हो गये हैं पर फिर भी जिनमें अभी जिज्ञासा जीवित है। जो प्रकृतिप्रदत्त सहजप्रकाश को खो चुके हैं और इसलिये अन्तश्चक्षुओं के सामने अन्धतामिस्र के छा जाने से मार्ग नहीं देख पा रहे हैं पर तो भी जो जीवन के सच्चे अर्थ को खोजना चाहते हैं। जो चाहते हैं कि हमारा जीवन निर्भ्रान्त हो जाये–ऐसे उन सभी लोगों के लिये यह अमृतकलश है। जो अपनी अपूर्णताओं को पूर्णता में, निर्बलताओं को बल में, अज्ञान को ज्ञान में, संशय और अविश्वास को पूर्ण विश्वास में, अकर्मण्यता को कर्मनिष्ठा में, एक वाक्य में कहें तो जो स्वधर्म की खोज और उसके लिये अपने आपको पूर्ण समर्पित करना चाहते हैं, ऐसे उन श्रद्धापूरित अन्तःकरण वाले सभी भक्तहृदयों के लिये यह गीतामृत रूप ज्ञान प्रसाद समर्पित है।

गीता कोई पूजा पाठ की पद्धति अथवा किसी प्रतिकात्मक धर्म का प्रतिनिधित्व नहीं करती अपितु गीता का ज्ञान सार्वभौमिक, वैज्ञानिक व सार्वकालिक है। गीता जीवन को अन्तर्दृष्टि से परिपूरित करने वाला अन्तश्चक्षु है। गीता निराशा, अविश्वास अकर्मण्यता, काल्पनिक भय, भ्रम, संशय, अशान्ति, असंवदेनशीलता, कायरता, आत्मग्लानि एवं अवसाद से भरे प्रत्येक मनुष्य के लिए एक जीवन्त दर्शन है, एक संजीवनी है। आओ अब संशय, मोह, अज्ञान को छोड़ सन्त व शास्त्रों के उपदेश के अनुरूप जीवन जीते हुए स्वकर्म, स्वकर्त्तव्य अथवा स्वधर्म के पालन का प्रण लें।

योग से मानव मात्र को आरोग्य प्रदान करते हुए राष्ट्रीय चरित्र व राष्ट्रीय नेतृत्व का निर्माण करने के लिये स्वयं भगवान ने हमारा चयन किया है। आसुरी शक्तियां चाहे जितनी भी सबल हो परन्तु विजय सदा सत्य की ही होती है। वर्तमान में भी राष्ट्र व विश्व में व्याप्त भय, भ्रष्टाचार, बेइमानी, अविश्वास व अकर्मण्यता को मिटाकर सत्य व सदाचार को प्रतिष्ठापित करने हेतु तथा कर्तव्य–बोध जागृत करने के लिये यदि हम आगे नही आये तो भी सत्य विजयी होगा परन्तु उसका श्रेय व यश हमें प्राप्त नही होगा।

[१]कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः [क]प्रत्यनीकेषु योधाः॥ ३२॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥ ३३॥

***